VOL- IX | ISSUE- II | FEBRUARY | 2022 | PEER REVIEW e-JOURNAL | IMPACT FACTOR 7.331 | ISSN 2349-638x

गुप्तकालीन भूमिकर व्यवस्था तथा वेतन व्यवस्था का अध्ययन

विजय शंकर कौशिक (शोधार्थी)
इतिहास विभाग, टांटिया विश्वविद्यालय,
श्री गंगानगर (राज.)

डॉ. अनिल कुमार (अस्सिटेंट प्रोफेसर) शोध निर्देशक
इतिहास विभाग, टांटिया विश्वविद्यालय,
श्री गंगानगर (राज.)

प्रस्तावना –

गुप्तकालीन कृषकों की आर्थिक दशा का समग्र और सम्पूर्ण अध्ययन करने के लिए गुप्तकालीन भूमिकर व्यवस्था व वेतन व्यवस्था की समुचित जानकारी आवश्यक है। भूमिकर प्राचीन काल से ही राजकीय आय का प्रमुख स्रोत रहा है। नीति ग्रन्थों में इसे षड़ भाग कहा गया है। क्योंकि यह माना जाता था कि भूमि की पैदावार का छठा अंश ही राजा को भूमिकर के रुप में लेना चाहिए। गुप्तकालीन राजाओं को सुचारु रुप से प्रशासन चलाने के लिए, राज्य के सम्पूर्ण आर्थिक विकास के लिए तथा सीमाओं की सुरक्षा के लिये प्रचुर मात्रा में धन की आवश्यकता थी। इसलिए उन्होनें अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में कर निर्धारण एवं कर संग्रहण पर विशेष ध्यान दिया और इसके लिए विभिन्न अधिकारियों को नियुक्ति किया। गुप्तकाल में एकत्रित किये जाने वाले करों में भूमिकर सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता था। सभी कृषि प्रधान देशों की तरह भारत में भी भूराजस्व राज्य की आय का सर्वप्रमुख साधन था। गुप्तकालीन प्रशासन भूमिकर के महत्व को पूरी तरह समझता था। इसलिये तत्कालीन साक्ष्यों में भूमिकर से सम्बन्धित व्यवस्था, नियम और अधिकारियों का विस्तृत विवरण मिलता है। जो कि किसानों की आर्थिक दशा पर भी पर्याप्त प्रकाश डालता है।

भूमि से सम्बन्धित विभिन्न करों का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है, किन्तु राज्य द्वारा ये कर किन रुपों में लिये जाते थे, इसका स्पष्ट उल्लेख गुप्तकाल के पूर्व नहीं मिलता है। सम्भवतः प्राचीन काल में भूमिकर प्रायः वस्तु व मुद्रा दोनों ही रुपों में ग्रहण किया जाता था। वैदिक काल तक मुद्रा का प्रचलन नही हुआ था।

यद्यपि निष्क को वैदिक काल की मुद्रा माना जाता है किन्तु डी. एन. झा और के. एम. श्रीमाली के अनुसार वैदिक साहित्य में वर्णित निष्क कोई नियमित स्वर्ण मुद्रा न होकर, केवल स्वर्ण धातु का एक ढेर मात्र था। कौशाम्बी के उत्खननकर्ता जी. आर. शर्मा का यह कहना है कि उन्हें वहाँ पर ईसा पूर्व नवी शताब्दी का एक तांबे का सिक्का मिला है किन्तु यह विचार विद्वानों द्वारा स्वीकार्य नही है। अतः बलि, भाग आदि भूमि से सम्बन्धित तथा अन्य प्रकार के कर संभवतः राजा को वस्तुओं के रुप में दिए जाते रहे होंगे। महाभारत में लिखा है कि राजा प्रजा की रक्षा के लिए षड्भाग को बलि के रुप में प्राप्त करे। बलि राजकीय राजस्व के लिये प्रयुक्त होने वाला सबसे प्राचीन शब्द है। इस शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है। इसमें उल्लेख है कि राजा के कर्त्तव्यपालन के बदले में प्रजा उसे बलि प्रदान करती है। इसमें राजा को बलि लेने का एकमात्र अधिकारी कहा गया है। ऋग्वेद में उल्लेख है कि हम ध्रुवरुप राजा को ध्रुव हवियों द्वारा सन्तुष्ट करते है और राजा ही अकेला विशः से बलि प्राप्त करने का अधिकारी है। इसके अतिरिक्त राजा के पद प्राप्ति के समय भी प्रार्थना की जाती थी कि इन्द्र भगवान उसे प्रजा से बलि दिलवाने में सहायता दें। राजा द्वारा बलि ग्रहण करने के कारण ही उसे बलिहृत कहा जाता था। अथर्ववेद में भी बलि शब्द का उल्लेख मिलता है इसके अनुसार राजा को प्रजा से प्रचुर उपहार एवं बलि प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हो। इसी में एक अन्य स्थान पर उल्लेख है कि राजा धन-सम्पत्ति को प्रदान करने वाला और सुदृढ़ रुप से धन का विभाजन करने वाला होता था और राजा के इस कर्त्तव्यपालन के बदले में प्रजा उसे बलि प्रदान करती थी। महाभारत में भी राजा द्वारा प्रजा से बलि वसूलने का उल्लेख है। इसके अनुसार कोष को

धन-धान्य से परिपूर्ण होना चाहिये तथा अन्न भण्डार सदैव पुष्टिकारक अनाजों से भरा रहना चाहियें। महाभारत में एक अन्य स्थान पर उल्लेख है कि कोष की वृद्वि के लिये अनाज की उपज का दसवाँ भाग राजा का होता है। जातकों में भी कर के लिये दो शब्दों बलि एवं कहापन (कार्षापण) का प्रयोग अलग-अलग रुप में वर्णित किया गया है। इसमें एक राजकुमार द्वारा बलि की माफी के लिये राजा को पत्र लिखे जाने का भी उल्लेख है। लेकिन इन ग्रंथो में भूमिकर का वैसा विस्तृत वर्णन प्राप्त नही होता है। जैसा कि गुप्तकाल में मिलता है। गुप्तकाल तक आते-आते कृषि की दशा और भूमिकर व्यवस्था में अनेक सुधार हुये। भूमिकर व्यवस्था का सुव्यवस्थित वैज्ञानिक आधार बनाया गया। भूमि की दशा व उसमें होने वाली आय के आधार पर करों का निर्धारण किया गया। राष्ट्र के अन्तर्गत सर्वाधिक करण नामक अधिकारी विभिन्न प्रकार के कर वसूलता था। गुप्तकाल में कई प्रकार के राजकरों का उल्लेख किया है।, जिनमें भाग नामक कर अन्न के उत्पादन पर दिया जानेवाला राजकर था। बलि नामक कर का उल्लेख उसने उपहार अथवा माँगने पर प्राप्त होनेवाले धन के रुप में किया है। साथ ही प्रणयकर, भेंट, उपरिकर एवं उद्रंगकर आदि अनेक करों का उल्लेख किया है जो कि भूमिकर के अलग-अलग स्वरुप थे।

भूमिकर निर्धारण का आधार - गुप्तकाल में भूमिकर निर्धारण के लिये एक निश्चित प्रक्रिया की व्यवस्था की गई थी। कर निर्धारण कई चरणों में किया जाता था। जिसका वर्णन इस प्रकार हैं -

भूमि का वर्गीकरण - भूमि कर गुप्तकालीन आर्थिक व्यवस्था का आधार था। इसलिये उसके उचित निर्धारण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। भूमि पर कर निर्धारित करने से पूर्व राज्य भूमि का वर्गीकरण करता था। वैदिक साहित्य में तीन प्रकार की भूमि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है- मकानों की भूमि (वास्तु), कृशिा योग्य भूमि (क्षेत्र) और चारागाह भूमि। परन्तु तत्कालीन साहित्यों से हमें भूमि की विभिन्न श्रेणियों का उल्लेख मिलता है जो कि निम्न है-

१. खेती की भूमि २. बंजर तथा परती जमीन ३. ऊबड़खाबड़ तथा सूखी जमीन ४. धान के खेत (केदार) ५. उद्यान (आराम) ६. फलों के बाग (खण्ड) ७. ईख के खेत (बाट) ८. ग्रामवासियों के ईधन की सुविधा के लिये जंगल (वन) ९. आबादी का वह हिस्सा जिस पर घर बने हों (वास्तु) १०. पूजा के वृक्ष (चैत्य) ११. मंदिर १२. सिंचाई की व्यवस्था (सेतु) १३. श्मशान भूमि १४. भिक्षा गृह (सत्र) १५. पशुओं को पानी पिलाने (प्रयापानीयशाला) १६. चारागाह (विवीत) १७. सड़कें। जिस भूमि खण्ड में एक वर्ष से खेती न की गई हो वह खिल कहलाती थी और जिसमें पाँच वर्ष से खेती न हुई हो उसे वन कहा जाता था। उपजाऊपन के आधार पर भूमि के विविध प्रकार थे जैसे नाल या कृषि योग्य (उर्वरा भूमि), वस्तु (बस्ती), प्रवह (बिना जोती हुई) और अप्रदा (जिससे राज्य को कोई आय प्राप्त नही होती थी) भूमि। अपने मौलिक गुणो के आधार पर भूमि को कई उपवर्गो में रखा जा सकता है। जैसे कृषि योग्य भूमि, ऊसर भूमि तथा वास योग्य भूमि। कृषि योग्य भूमि के अन्तर्गत प्रमुखतः सीता, क्षेत्र, वाप, पुक्कोली- खज्जान तथा केदार भूमि सम्मिलित थी। ऊसर भूमि बंजर होती थी जिसे अप्रहत, खिल - अर्द्धखिल एवं हज्जिका के नाम से सम्बोधित किया जाता था। मनुष्यों के निवास हेतु प्रयुक्त भूमि को वास्तु भूमि की संज्ञा दी गयी थी।

कर निर्धारण के सिद्वान्त -

गुप्तकाल में करों को निर्धारित करने के सिद्वान्त इस प्रकार बनाये थे कि राजकीय आय में वृद्वि तो हो, परन्तु प्रजा को कर देने का कष्ट कम से कम हो। प्रजा पर कर लगाने के सन्दर्भ में हमारे विधिग्रन्थों में राजा को स्पष्ट निर्देश दिये गये है। राजा को प्रजा से धीरे-धीरे अथवा थोड़ा-थोड़ा करके कर लेना चाहिये। प्रजा की सामर्थ्य के अनुसार ही कर होना चाहिये। प्रजा उस कर को वहन करने में समर्थ हो। जो राजा अपनी प्रजा का शोषण करता है, वह राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। कर की मात्रा इस प्रकार निर्धारित होनी चाहिये कि कृषक, व्यापारी, पशुपालक आदि कर को अपने ऊपर भार न समझें और यह अनुभव करें कि कर देना उनके अपने हित में है। कर निर्धारण का सिद्वान्त यह है कि किसी भी व्यवसाय के लाभ पर ही कर लगाया जाता है, पूंजी पर नही। प्रजा की रक्षा करने के कारण ही राजा उससे कर ग्रहण करता है। अमरकोष के अनुसार जो राजा प्रजा की रक्षा नही कर सकता, उसको कर लेने का भी अधिकार

नही है। राजा को चाहिये कि वह प्रजा की रक्षा करें, उसको पुष्ट और समृद्व करें, तभी कर ग्रहण करें। जैसे कि गौ को चारा खिला कर और सुपुष्ट करके ही उससे दूध लिया जाता है। राजा को प्रजा पर उसी प्रकार कर लगाना चाहियें जिस प्रकार वायु जल ग्रहण करती है अर्थात राजा को प्रजा से धन इसी रीति से ग्रहण करना चाहिये कि वह कर प्रजा के लिये पीड़ादायी न हों। महाभारत में भी कहा गया है कि जिस प्रकार जोंक धीरे-धीरे शरीर का रक्त चूसती है उसी प्रकार राजा भी कोमलता के साथ ही राष्ट्र से कर वसूल करें जिस प्रकार बाघिन अपने बच्चे को दाँत से पकड़कर इधर-उधर ले जाती है परन्तु न तो उसे काटती है और न ही बच्चे के शरीर में पीड़ा पहुँचने देती है उसी प्रकार राजा कोमल उपायों से ही राष्ट्र का दोहन करें। राजा को एक माली के समान बनना चाहिये क्योंकि जिस प्रकार से माली अपनी वाटिका के फल और फूल ग्रहण करता है वृक्ष को नही काटता है, न ही वह कोयला बनाने वालों के समान वृक्ष को जलाता है उसी प्रकार से राजा चिर-काल तक प्रजा का पालन करते हुए राज्य का उपभोग करता है। अमरकोष के अनुसार प्रजा जब कर दे सकने की स्थिति में हो तभी कर लेना चाहिये जैसे कि वृक्षों से भी तभी फल तोड़ने चाहिये जब वे पके होते है। कच्चे फल तोड़ लेने से वृक्ष के मूल को क्षति पहुचती है। व्यापार और उद्योगो पर कर की मात्रा क्रय-विक्रय के मूल्य, मार्ग की विपत्तियों आदि पर विचार करके, उसके लाभ पर कर निर्धारित किया जाना चाहिये। किसी भी वस्तु पर कर को एक ही बार लगाना चाहिये, बार-बार नही। यदि किसी राष्ट्रीय विपत्ति के समय अतिरिक्त कर लगाना पड़े तो वह भी प्रजा को विश्वास में लेकर ही लगाना चाहियें।

इस विवरण से स्पष्ट है कि भूमि पर कर की व्यवस्था निर्धारित करने से पूर्व शासन को भूमि की विभिन्न श्रेणियों, माप, लम्बाई, चौड़ाई आदि का निर्धारण करने की उचित व्यवस्था करनी होती थी। ताकि उस भूमि पर कर लगाने के पश्चात् किसी प्रकार का कोई विवाद उत्पन्न न हो। इसी कारण इस कार्य को करने के लिये विभिन्न समय में भिन्न - भिन्न अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। पाणिनी के समय में इस कार्य को करने वाले अधिकारी क्षेत्रकर कहलाता था, बौद्व ग्रन्थों में इसे रज्जु गाहक और अशोक के अभिलेखों में इसे रज्जुक कहा गया और गुप्तकाल में करणिक इसका मुख्य कार्य भूमि सर्वेक्षण का ही था और यही भूमि नाप, भूमि की सीमा का निर्धारण और विवादों का निर्णय आदि कार्य करता था। अतः राज्य भूमि पर किसी प्रकार का विवाद उत्पन्न न हो इसके लिये भूमि का पूरा लेखा-जोखा अपने पास रखता था।

भूराजस्व की दर -

कर निर्धारण करने के लिये भी राज्य को विधिग्रन्थों में प्रतिपादित सिद्वान्तों एवं नियमों का पालन करना होता था। हमारे विधिग्रन्धों में भूराजस्व की जो दरें निश्चित की गई है। सम्भवतः इन दरों का आधार भूमि की मिट्टी और फसल होती थी। अथर्ववेद में उल्लेख है कि एक भूमि से जो अन्न उत्पन्न हो उसके तीन भाग गन्धर्वों के पास जाने चाहिए और चार भाग गृहलक्ष्मी अर्थात् कृषक के घर जाने चाहियें। सम्भवतः इसका यह भाव रहा होगा कि कृषि की उपज का भाग तो राज्य लें और भाग कृषक के पास रहें। अमरकोष में बारह प्रकार की भूमि का उल्लेख है - उर्वरा, ऊसर, मरू,अप्रहत, सद्वल, किल जलप्रायमनुपम, कच्छा, शर्करा, शकविती, नदीमातृक, देवमातृक। आर्थिक उपयोगिता की दृष्टि से भूमि को कई भागों में विभाजित किया गया है- १. वास करने योग्य भूमि - वास्तु २. चारागाह भूमि ३. खेती के उपयुक्त भूमि - क्षेत्र, ४. नहीं जोती जाने वाली भूमि - सील ५. बिना जोती गयी जंगल भूमि - अप्रहत। अलग-अलग प्रकार की भूमि के लिये अलग-अलग कर निर्धारित करने का सुझाव दिया था।

गुप्तकाल में आये चीनी यात्री फाह्यान ने भी इस काल में भूमि कर की दर उपज का शष्ठम् बताई है। कृषक उपज का छठा भाग भूराजस्व के रुप में देते थे। महाकवि कालीदास के ग्रन्थों में भी विभिन्न प्रकार की भूमि से विभिन्न दरों द्वारा भूमिकर वसूल करने का विधान किया गया है जिस भूमि की सिंचाई, नदी, तालाब, नहर, कुएँ आदि साधनों से की जाती है उनसे कुल उपज का एक चौथाई, एक तिहाई तथा आधा अंश प्राप्त किया जाता था। ऊसर भूमि से उपज का छठा भाग कर के रुप में लिया जाता था। स्मृतियों में भी कर की एक निश्चित दर नही मिलती है। मनुस्मृति में भूमिकर की दर उपज का

छठा, आठवां, बारहवां एवं सोलहवा भाग वसूलने का निर्देश दिया गया है। बृहस्पति स्मृति के अनुसार राजा को परती भूमि से, वर्षा के जल से सीची जाने वाली भूमि से और जो फसल बंसत ऋतु में काटी जाती है उससे भाग कर लेना चाहिये। ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि की उपयुक्तता तथा सिंचाई के साधन से उसकी सम्पत्रता को दृष्टि में रखकर भूमिकर की व्यवस्था की जाती थी। वर्षा, बीज और कृषक के श्रम पर विचार करके अधिक से अधिक उपज का या भाग अथवा कम से कम उपज का छठा भाग भूमिकर के रुप में स्वीकार किया जाता था। बृहतसंहिता के अनुसार उस समय कुछ राजकीय भूमि भी होती थी, जिसका उपयोग राजा करता था। कभी-कभी राजकीय भूमि को राजा की सहमति पर कृषक जोतते थे और उपज का आधा भाग राजा को प्रदान करते थे। भूमि कर प्रायः देश और काल के अनुसार उपज को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाता था। वस्तुतः भूमिकर भूमि की स्थिति, उर्वरता, उपज, सिंचाई के साधन आदि विभिन्न बातों को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाता था। सुख और समृद्वि के समय षड़भाग ही राजभाग के रुप में प्राप्त किया जाता था, किन्तु प्रचुर धान्य होने पर या राष्ट्र के आपत्तिकाल में यह राजभाग उपज का या तक राजा प्राप्त कर सकता था।

भूमि से सम्बन्धित प्रमुख कर -

भूमि से प्राप्त राजस्व, शासन को आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान करने का मुख्य स्रोत रहा है। गुप्तकालीन भारत में भूराजस्व के निम्न स्रोत माने जाते है।

भाग - यह कर राजा को भूमि के उत्पादन से प्राप्त होने वाले भाग का छठा हिस्सा था। भाग कर के लिये प्रयुक्त होने वाला यह एक अन्य शब्द था। कृषि उत्पादन पर लगाया जाने वाला यह एक विशेष प्रकार का कर था। यह सामान्य राजस्व प्रदायी भूमि पर राजा के अन्नांश का द्योतक था। इस भूमि से राजा उपज का षष्ठांश भाग वसूल करता था। अमरकोष के अनुसार भाग उस भूमि से ग्रहण किया जाता था जो राजकीय नियन्त्रण में होती थी किन्तु उस पर कृषक वर्ग स्वयं कृषि कार्य करते थे और राजा उस भूमि से उपज का षष्ठांश वसूल करता था। यू.एन. घोषाल के अनुसार भाग का अर्थ उपज में राजा का भाग या हिस्सा था। वह साधारणतया उपज का छठा भाग होता था

भोग - राजा को हर दिन फल-फूल, बागों की पैदावार एवं सब्जियों के रूप में दिया जाने वाला कर।

प्रणयकर - गुप्तकाल में यह ग्रामवासियों पर लगाया गया अनिवार्य या स्वेच्छा चन्दा था।

उपरिकर एवं उद्रंगकर - यह एक प्रकार का भूमि कर होता हैथा। भूमि कर की अदायगी दोनो ही रूपों में 'हिरण्य' (नकद) या 'मेय' (अन्न) में किया जा सकता था, किन्तु छठी शती के बाद किसानों को भूमि कर की अदायगी अन्न के रूप में करने के लिए बाध्य होना पड़ा। भ्ज्ञूमि का स्वामी कृषकों एवं उनकी स्त्रियों से बेकार या विष्टि लिया करता था। गुप्त अभिलेखों में भूमिकर को 'उद्रंग' या 'भागकर' कहा गया है। स्मृति ग्रंथों में इसका 'राजा की वृत्ति' के रूप में उल्लेख किया गया है।

हलदण्ड कर - यह कर हल पर लगता था। गुप्तकाल में वणिकों, षिल्पियों, षक्कर एवं नील बनाने वाले पर राजकर लगता था।

वर्तनी - सड़क इस्तेमाल करने पर लगने वाला कर

सेतु - सिचांई वाली भूमि तथा तालाब पर लगने वाला कर

वन - जंगल पर लगने वाला कर

प्रणय - आपातकालीन कर

कौष्ठेयक - पानी एवं भूमि पर लगने वाला कर

दषापराध - दस प्रकार के अपराधों के लिए किए गए जुर्माने।

चाट - लुटेरे द्वारा उत्पीड़न से मुक्ति का कर।

पिण्डकर - गुप्तकाल में कृषकों को कुछ गाँवो को एक साथ मिलकर कर देना पड़ता था उसे पिण्डकर कहते थे। यह कर सम्भवतः उपज का कुछ भाग था, जो कृषक राजा को देते थे।

सेनाभक्त - गुप्तकाल में सेनाभक्त नामक कर का भी उल्लेख मिलता है। यह कर गाँव वालो को सेना के भोजन की व्यवस्था के लिये देना पड़ता था। यह कर उस समय दिया जाता था जब सेना किसी प्रदेश से गुजरती थी तभी उस प्रदेश की प्रजा उसके लिये तेल, चावल आदि देती थी और इसी कारण इसे सेनाभक्त कहा जाता था।

विवीत - चारागाह भूमि पर भी राजा कर वसूल करता था, यह कर विवीत कहलाता था। इन चारागाहों का अध्यक्ष विवीताध्यक्ष होता था। यह अधिकारी पशुओं के चरने के लिये उचित चारागाह भूमि का प्रबन्ध करता था। राज्य को वन भूमि से भी राजकीय आय प्राप्त होती थी। अर्थशास्त्र में भी जंगलो के आर्थिक महत्व को बताते हुये इन्हें आय शरीर का अंग बताया गया है। अर्थशास्त्र में वनों के तीन प्रकार बताये गये हैं - शिकार वन, वन्य वस्तु के जंगल और हाथियों के जंगल। अर्थशास्त्र में वन्य वस्तु के जंगल के लिये एक विभाग का उल्लेख मिलता है, इस वन उपज के अधीक्षक को कुप्याध्यक्ष कहते थे। वनों से महत्वपूर्ण चीजें एकत्रित करने जैसे- लकड़ी, चमड़ा, हड्डी, सींग, धातु, कठकोयला तथा चारा इत्यादि इन उत्पादों को विक्रय वस्तुओं में बदला जाता था और इससे राज्य को आय प्राप्त होती थी। अर्थशास्त्र में वर्तनी कर का उल्लेख भी मिलता है जो कि सड़क पर लगने वाला कर था, इसकी वसूली भी सम्भवतः विवीताध्यक्ष द्वारा की जाती थी।

आपत्तिकालीन कर -

आपत्ति के समय में भी राजा द्वारा कृषकों से प्रणय कर के रुप में उपज का तिहाई भाग वसूल करने का उल्लेख है जो गाँव वालों को इकट्ठा कर राजा की और से उन पर कर निर्धारित किया जाता था। आपातकाल के समय में यह कर एक बार ही वसूला जा सकता था। अमरकोष के अनुसार आर्थिक संकट के समय में कृषकों की भूमि के उत्पादन के अतिरिक्त यह कर व्यापारियों, शिल्पियों एवं पशुपालकों से भी वसूल किया जाता था, किन्तु राजा को ब्रह्मदेव भूमि के स्वामियों से इस प्रकार का कर वसूलने का अधिकार नही था। कृषकों से यह कर भूमि की उपज के अनुसार चौथाई से तिहाई तक लिया जा सकता था। मनु के अनुसार भी यह कर भूमि की उपज के अनुसार चौथाई भाग से अधिक नही होना चाहियें। इस कर के विषय में यह भी निश्चित है कि इस कर को वसूल करने में राजा जनसाधारण पर अत्याचार करता था। सम्भवतः इसी कारण रुद्रदामन ने अपने जूनागढ़ अभिलेख में लिखा है कि उसने प्रजा से कर, विष्टि या प्रणय जैसा कोई कष्टकर कर नही वसूला था।

जलकर -

शास्त्रों के अनुसार राजा को पृथ्वी और जल का स्वामी माना गया है, इसलिये ये माना गया है कि यदि कोई अपने परिश्रम से कुआँ बनाये तो सिंचाई करने वाला कृषक फसल का पाँचवा अंश, राजा को जलकर के रुप में दें। अपने कन्धे पर जल का घड़ा लाकर, उससे खेती को सींचने वाले कृषक को चतुर्थांश राजा को देना चाहिये और नहर आदि के जल से सिंचाई करने वाला तृतीयाशं राजा को कर के रुप में दें। नदी, सरोवर, तड़ांग या कुँएं आदि के जल से सिंचाई करने वाले कृषक राजा को चतुर्थाश दें। जो किसान स्वतन्त्र रुप से खेती करते थे और सिंचाई का प्रबन्ध भी अपने आप करते थे, उनसे जमीन के उत्तम या निकृष्ट होने के अनुसार कुल उपज का या भाग भूमिकर के रुप में लिया जाता था। जो किसान सिंचाई के लिए सरकार से जल लेते थे, उनसे भूमिकर की दर अन्य थी। जिन जमीनों की सिंचाई कूप आदि से हाथ द्वारा पानी खींचकर होती थी, उनसे उपज का भाग लिया जाता था। जिनको चरस, रहट आदि द्वारा पानी खींचकर सींचने के लिए दिया जाता था, उनसे उपज का भाग लिया जाता था। जहाँ सिंचाई वातयन्त्र के द्वारा होती थी उनसे उपज का भाग लेने का नियम था। नदी या नहर से सिंचाई होने की दशा में भूमिकर की मात्रा उपज का चौथाई भाग होती थी। इससे स्पष्ट है कि कृषक स्वयं भी कुँएं खुदवाकर, तालाब या बावड़ी बनाकर सिंचाई की व्यवस्था करते थे जो कृषक इस तरह की व्यवस्था करते थे उन्हें भूमिकर में छूट देकर प्रोत्साहित किया जाता था। कालीदास ने भी नदियों से खेतो में पानी लाने के लिये स्थानीय निवासी द्वारा अनेक नहरें व नालियाँ बनाने का उल्लेख किया है। इसका अर्थ है कि जो कृषक स्वयं सिंचाई की व्यवस्था करते थे। उन्हें राज्य द्वारा प्रोत्साहन मिलता था। अन्य फसलों के लिए राज्य सिंचाई का समुचित प्रबंध करता था। मनुस्मृति के अनुसार भी किसी व्यक्ति को तालाब नही बेचना चाहिये। इससे प्रतीत होता है कि तालाब निजी सम्पत्ति होते थे। वह तालाब, कुँओ तथा झीलों पर बाँध बनवाकर एक स्थान पर पानी एकत्रित करवाता था, गुप्तकाल में सौराष्ट्र में सुदर्शन झील पर बाँध का निर्माण इसका उदाहरण है। सम्भवतः अधिक जलकर केवल राज्य की भूमि के सन्दर्भ में था, इसका निजी भूमि की सिंचाई से

कोई सम्बन्ध नही था। लल्लन गोपाल के अनुसार सिंचाई के लिये इस काल में कृषकों से कोई उपकर नही लिया जाता था।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही भूमि पर कर लिये जाते थे जो समय एवं परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते थे तथा वह कम ज्यादा भी किये जाते रहते थे। य़द्यपि आरम्भ से भूमिकर प्रजा की इच्छा पर आधारित था किन्तु धीरे-धीरे यह राज्य द्वारा अनिवार्य अंशदान के रुप में ग्रहण किया जाने लगा था। गुप्तकाल में कृषकों से निश्चित दरों पर भूमिकर वसूल किया जाता था पर उनकी सुविधा व असुविधा का ध्यान रखना राज्य की जिम्मेदारी थी।

भूमिकर वसूली का स्वरुप

भारत में वैदिक काल से ही मुद्राओं का प्रयोग शुरु हो गया था। सम्पूर्ण भारत से प्राप्त चाँदी की आहत मुद्राओं के सैकड़ों पुंज मिलते है। वर्तमान उत्खननों के समय भी इनकी प्राप्ति से इन मुद्राओं की संख्या सहस्रों में हो गई है। मुद्रा के आगमन से निश्चय ही कर वसूली मुद्रा के रुप में होने लगी होगी। बृहतसंहिता में उल्लेख किया गया है कि वन में स्वयं या श्रोत्रिय ब्राह्मण के द्वारा उत्पादित अन्न को राजा न लें। श्रोत्रिय ही नही बल्कि अन्य कृषक वर्ग को भी यही निर्देश था कि बीज के उगने, बढ़ने पर उसमें से कच्चा या पक्का दाना कृषकों को न तोड़ने दिया जाए। अर्थशास्त्र में स्पष्ट है कि यदि कृषक राजकर बचाने के लिये अपने उत्पादन की तौल कम दिखाये तो जितना अन्न कम दिखाया गया हो उसमें आठ गुना वसूल किया जाये।

अमरकोष में कर भुगतान के रुप में अनाज के अतिरिक्त मुद्रा, पशु, कच्चा माल और विष्टि आदि भी इसके साधन बताये गये है। अमरकोष में कई स्थानों पर स्पष्ट रुप से उपज का एक निश्चित भाग (जो भूमि की दशा और सिंचाई के साधनों पर निर्भर करता था) कृषकों द्वारा राज्य को प्रदान किये जाने का उल्लेख है। राज्य द्वारा अनाज का स्वयं क्रय-विक्रय करना तथा अनाज को तौलने व नापने के साधनों जैसे धारक और मापक आदि शब्दों के उल्लेख से ज्ञात होता है कि राज्य भूमि से अपने भाग को अनाज के रुप में प्राप्त करता था। इसके अतिरिक्त राज्यों में अनाजगृह या भण्डारगृह मिलते है जहाँ भूमिकर के रुप में मिले अनाज का संचय किया जाता था। इसकी देखरेख राजकीय अधिकारी करते थे। जो अनाज के नष्ट होने से पूर्व इसकी निकासी की व्यवस्था करते थे। भूमिकर के लिये प्रयुक्त होने वाला शब्द भाग भी इस तथ्य का सूचक है कि यह उपज का एक भाग होता था। अनाज के रुप में ग्रहण किया जाने वाला भूमिकर मेय कहलाता था। जबकि मुद्रा के रुप में लिया जाने वाला कर हिरण्य कहलाता था। यद्यपि भूमिकर अनाज के रुप में लेने के उल्लेख प्राप्त होते हैं किन्तु भूमि स्वामी अपनी सुविधानुसार करों का भुगतान मुद्रा के रुप में भी कर सकता था। मुद्रा के प्रचलन के पश्चात् सम्भवतः शीघ्र खराब होने वाली वस्तु के लिये लिया जाने वाला कर मुद्रा के रुप में लिया जाने लगा होगा। क्योंकि राज्य को भी अब मुद्रा की आवश्यकता राज्य के अन्य कार्यो के लिये भी आवश्यक रुप से होने लगी थी।

भूमिकर से सम्बन्धित विभिन्न अधिकारी

गुप्तकाल में भूमिकर निर्धारण व संग्रहण करने के लिये विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। जिनका विवरण तत्कालीन ग्रंथों में विस्तारपूर्वक दिया गया है। इनके प्रमुख अधिकारी ध्रवाधिकरण, गोप, सन्निधाता, विवीताध्यक्ष, आकराध्यक्ष आदि थे।

१. भाग, भोग, उपरिकर, हरिण्य कृषि योग्य भूमि से प्राप्त आय थी यह अधिकांश जनपद क्षेत्र से प्राप्त होती थी और राष्ट्र कहलाती थी।
२. खनि - खानों से उपलब्ध सुर्वण, रजत, वज्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल, शंख, लोह, लवण, भूमि प्रस्तर आदि धातुओं से जो आय प्राप्त होती थी, उसका नाम खनि था।
३. सेतु - पुष्प, फल, वाट षण्ड, केदार, मूल और वाप आदि से प्राप्त आय का स्रोत सेतु कहा जाता था।
४. वन - जंगली पशु, मृग, हस्ति और वन सम्बन्धी द्रव्यों से राज्य को जो आय प्राप्त होती थी, उसे वन कहा जाता था।
५. वणिक् पथ -मार्गो का उपयोग करने वाले वणिकों से होने वाली आय वणिक् पथ कहलाती थी।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि गुप्तकाल से पूर्व की तुलना में गुप्तकाल में राजस्व-प्रशासन बहुत अधिक

विकसित था। उस समय प्रत्येक अधिकारी के लिये कार्यों का स्पष्ट विभाजन किया गया था। अमरकोष के अनुसार अधिकारी तथा सैनिक आनुवंशिक नही होने चाहिये क्योंकि इससे प्रशासनिक दिक्कतें होती हैं।

सन्दर्भ सूची -

१. उपाध्याय, भगवतशरणः कालीदास एवं उनका युग, पृ०- १५८, १५९
२. मैटी, एस. के., इकनॉमिक लाइफ इव नार्दन इण्डिया इन द गुप्ता पीरियड, पृ०- ११७
३. शर्मा, आर. एस., प्रारम्भिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास, पृ०- २००
४. वी० ए० स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया चतुर्थ संस्करण पृ०- ३१४
५. अल्तेकर, ए. एस., स्टेट एण्ड गर्वमेन्ट इन एंशियेन्ट इण्डिया, बनारस, १९८९
६. अल्चिन, दि बर्थ ऑफ इंडियन सिविलाइजेशन,
७. अग्रवाल, वासुदेव शरण, पाणिनि कालीन भारतवर्ष, वाराणसी, सं० २०१२
८. आनन्द, शशि, गुप्तकालीन वित्तीय व्यवस्था, क्लासिकल पब्लिशिग कम्पनी, नई दिल्ली, १९९७
९. कौशाम्बी डी. डी., इन्ट्रोडक्शन टू दि स्टडी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री
१०. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन